उमर ख़ैयाम की रुबाइयाँ

रघुवंशलाल गुप्त

किताबिस्तान
इलाहाबाद

द्वितीय संस्करण की भूमिका

इस अनुवाद को हिन्दी-संसार ने अपनाया, यह हमारे सौभाग्य की बात है। बहुत दिन से नये संस्करण की माँग है जो कई कारणों से पूरी नहीं की जा सकी। इस आशातीत प्रोत्साहन के लिए हम हृदय से आभारी हैं।

कुछ मित्रों की आलोचना और परामर्श से लाभ उठा कर, हमने इस संस्करण में कहीं कहीं पर थोड़ा-सा संशोधन और परिवर्त्तन कर दिया है। आशा है पाठकों को यह रुचिकर होगा और रुबाइयों का यह दूसरा संस्करण भी पहिले की तरह ही लोकप्रिय होगा।

हॉक्सडेल, शिमला
२६ जून १९४६

रघुवंशलाल गुप्त

निवेदन

इस "अनुवाद" के तैयार करने में हम को निम्नलिखित मित्रों से बहुमूल्य सहायता मिली है : हम उनके अनुग्रह के आभारी हैं—

१—प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा, एम्० ए०, वाइस्-चांसलर, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी;

२—मित्रवर श्रीयुत् दीनदयालु गुप्त, एम्० ए०, लेक्चरर, लखनऊ यूनीवर्सिटी;

३—मिस्टर क्यू० ए० वदूद, एम्० ए०, पटना।

अब रह गये गुरुवर पं० गोकुलचन्द्र शर्मा, एम्० ए०, धर्म-समाज इण्टरमीडिएट कालिज, अलीगढ़। आपके किस किस अनुग्रह का धन्यवाद दिया जाय ? सब से पहिले आप ही ने हिन्दी-साहित्य से हमारा परिचय कराया। आप ही ने कविता करनी सिखाई। आप ही की अनुमति से इस "अनुवाद" का प्रारम्भ हुआ और आपके प्रोत्साहन और सत्परामर्श से ही यह इस अवस्था पर पहुँचा है कि पुस्तक रूप में प्रकाशित हो। यह "अनुवाद" आपको पसन्द आये, यही हमारी आशा है; यही हमारा धन्यवाद है।

रुक्विल्, शिमला
१२ जून, १९३८ ई०

रघुवंशलाल गुप्त

उमर ख़ैयाम और उनकी रुबाइयाँ*

ख़ैयाम का जीवन

हकीम ग़यासुद्दीन अबुलफ़तह उमर बिन इब्राहीम ख़ैयाम का जन्म ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में ख़ुरासान देश के प्रधान नगर नैशापुर में हुआ था। इनके जीवन-वृत्तान्त के विषय में प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों ने बहुत कुछ छान-बीन की है परन्तु निश्चयात्मक रूप से अधिक नहीं कहा जा सकता।

---

*नोट—जो पाठक उमर ख़ैयाम के जीवन-वृत्त के विषय में विशेष छान-बीन करने को उत्सुक हों उनसे हमारा अनुरोध है कि वे मौलाना सुलेमान नदवी के "ख़ैयाम" (उर्दू: दारुलमुसन्नफ़ीन, आज़मगढ़) को अवश्य पढ़ें। इस विषय पर जो कुछ अब तक लिखा गया है, उस सब का उल्लेख इस पुस्तक में है और सभी मुख्य विद्वानों के मत का तर्क-पूर्ण विवेचन किया गया है। मौलाना साहब ने अनेक परिश्रम और खोज के बाद यह पुस्तक लिखी है और ख़ैयाम के जीवन-सम्बन्धी कई नई बातें निकाली हैं। इनका उल्लेख हमने भी अपने लेख में यथास्थान किया है। परन्तु विस्तार-भय से हम मौलाना साहब की दलीलों का ब्यौरा नहीं दे सके।

उमर ख़ैयाम की "बीजगणित" को छोड़ कर, उनके

उमर ख़ैयाम की रुबाइयाँ

मौलाना सुलेमान नदवी के "ख़ैयाम" के प्रकाशन होने के पहिले प्रायः सभी विद्वान ख़ैयाम का मृत्यु-संवत् सन् ११२३ ई० मानते थे; और क्योंकि ख़ैयाम के दीर्घायु होने में कोई सन्देह नहीं, यह अनुमान किया जाता था कि इनका जन्म सन् १०२३ ई० और १०४६ ई० के बीच हुआ होगा। मौलाना साहब ने यह नतीजा निकाला है कि उमर ख़ैयाम की मृत्यु सन् ११३२ ई० के लगभग और उनका जन्म सन् १०४८ ई० के लगभग हुआ। अपने मत के समर्थन में आपने अनेक पुष्ट प्रमाण दिये हैं और हम आपके मत को अधिक न्याय-संगत समझते हैं।

कहते हैं कि उमर ख़ैयाम का ख़ान्दानी पेशा "ख़ेमा" या तम्बू बनाना था और ये स्वयं तम्बू सीकर अपनी गुज़र किया करते थे। एक रुबाई में आपने फ़रमाया है—

जो ख़ैयाम सिया करता था "हिकमत" के ख़ेमे अनमोल
गिरा वही दुख की भट्ठी में, अनायास हा! गया फफोल।
काल-कतरनी नें दी उसकी, अल्प आयु की डोरी काट
"क़िस्मत" के दलाल ने उसको बेच दिया मिट्टी के मोल।*

अन्य सभी प्राप्य ग्रन्थों का पूर्ण संग्रह भी इस पुस्तक में छपा है। रुबाइयों का संग्रह देसना (ज़िला पटना) वाली पाण्डुलिपि के आधार पर है।

خیّام کہ خیمہائے حکمت می دوخت
در کورۂ غم فتاد و ناگاہ بسوخت

यों तो कितने ही फ़ारसी कवियों ने अपना उपनाम अपने पेशे पर रख छोड़ा था—"अत्तार" इत्र और दवायें बेचा करता था; "हमगर" कपड़े रफ़ू किया करता था; इत्यादि। परन्तु, कुछ विद्वानों का मत है कि उमर "ख़ैयाम" का सम्बन्ध केवल ज्ञान के ख़ेमों तक ही परिमित था। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सुल्तान मलिकशाह की छत्र-छाया में रह कर ख़ैयाम को अपने भरण-पोषण के लिए साधारण तम्बू नहीं सीने पड़े होंगे। सम्भव है इनके पूर्वज कभी यह काम करते रहे हों, जिससे उनके वंशज "ख़ैयाम" कहलाने लगे हों। अपनी बीजगणित की पुस्तक में उमर ने स्वयं अपने को "अलख़ैयामी" बताया है। इससे अनुमान किया जाता है कि "ख़ैयाम" केवल इनका कौटुम्बिक उपनाम था।

इनके अध्ययन-काल के विषय में एक अद्भुत कथा प्रसिद्ध है। कहते हैं कि उमर ख़ैयाम, निज़ामुल्मुल्क और हसन इब्न सब्बाह तीनों इमाम मुवफ़्फ़क़ नैशापुरी के शिष्य थे और साथ साथ पढ़ते थे। इमाम साहब ऐसे विद्वान और गुणी थे कि जन-साधारण में यह बात प्रसिद्ध थी कि जो लड़का इमाम साहब से शिक्षा पाता है वह एक दिन अवश्य

مقراض اجل طناب عمرش ببرید
دلال امل برایگانش بفروخت

धन और मान का अधिकारी होता है। इसी लिए धनी और उच्चाकांक्षी मनुष्य दूर दूर से अपने पुत्रों को इनके यहाँ पढ़ने भेजते थे। अस्तु।

एक दिन ये तीनों एक जगह इकट्ठे हुए तो हसन इब्न सब्बाह ने कहा कि लोगों का विश्वास है कि इमाम साहब के शिष्य ऐश्वर्य और मान प्राप्त करते हैं, तो हम में से तीनों नहीं तो कम से कम एक तो अवश्य किसी उच्च-पद पर पहुँचेगा। हम लोगों को यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम में से जो कोई धन-सम्पन्न बन जाये वह शेष दोनों को अपना हिस्सेदार बना ले। उमर ख़ैयाम और निज़ामुल्मुल्क ने यह बात मान ली और वचन दे दिया। निज़ामुल्मुल्क सुल्तान अल्प अरसलान सिल्जोक़ी (१०६२–१०७२ ई०) और उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र मलिकशाह सिल्जोक़ी के वज़ीर हुए। उमर ख़ैयाम ने विज्ञान और साहित्य के साम्राज्य पर अधिकार किया। कहते हैं कि निज़ामुल्मुल्क की कृपा से इनको जागीर मिली और सुल्तान मलिकशाह ने इनके लिए एक यन्त्रघर बनवा दिया जहाँ पर कई वर्ष तक ये अपनी वैज्ञानिक समस्यायें सुलझाते रहे। निज़ामुल्मुल्क की बदौलत इब्न सब्बाह को भी राजदरबार में उच्च स्थान मिला, परन्तु अपनी चालाकी और विश्वासघात के कारण उसको वहाँ से भागना पड़ा। अन्त में यह इस्माइलियों के गिरोह में जा मिला और उनका सरदार बन

बैठा। "बदनाम अगर होंगे तो क्या नाम न होगा"। नाम इसने भी कमाया, किन्तु अत्याचार और अनाचार के नाते। यह अपने अनुयायियों को भंग (हशिश) पिला पिला कर मस्त कर देता था और जब उनको भले-बुरे की कुछ सुध न रहती थी, तब भाँति भाँति के प्रलोभन दे कर धर्म के नाम पर उनसे नर-हत्या कराता था। मलिकशाह की मृत्यु के बाद इन इस्माइलियों ने बहुत ज़ोर पकड़ा। हज़ारों निर्दोष मनुष्य इनके हाथों मारे गये। स्वयं निज़ामुल्मुल्क इन्हीं के ख़ंजर के शिकार हुए। योरोप में ये लोग असैसिन्स (assassins) कहलाते थे और इनके पैशाचिक कर्मों का प्रमाण यह है कि आज कल असैसिन (assassin) हत्यारे को कहते हैं।

यदि यह कथा सत्य होती तो संसार के इतिहास में अपने ढंग की अद्वितीय ठहरती; क्योंकि इमाम मुवफ़्फ़क़ के तीनों शिष्य अपने अपने हल्क़े में ख़ूब सरनाम हुए। तीनों का नाम इतिहास-पृष्ठ पर अमिट लेख में लिखा है। परन्तु ई० जी० ब्राउन, सर डेनीसन रॉस प्रभृति विद्वानों का कथन है कि यद्यपि निज़ामुल्मुल्क, उमर ख़ैयाम और इब्न सब्बाह तीनों लगभग एक ही समय में हुए थे, इनका सहपाठी होना असम्भव है। निज़ामुल्मुल्क का जन्म सन् १०१७–१८ ई० में हुआ था। इब्न सब्बाह और उमर ख़ैयाम की मृत्यु ११२३–२४ ई० के लगभग हुई। यदि

ये तीनों सम-वयस्क थे तो मृत्यु के समय उमर ख़ैयाम और इब्न सब्बाह की अवस्था सौ वर्ष से अधिक रही होगी; जो कि असम्भव-सा प्रतीत होता है। यदि उमर ख़ैयाम का जन्म और मरण का काल मौलाना सुलेमान नदवी के मतानुसार क्रमशः १०४८ ई० और ११३२ ई० माना जाय, तब तो इन तीनों का सहपाठी होना नितान्त असम्भव है।

आजकल उमर ख़ैयाम केवल अपनी रुबाइयों के कारण ही प्रसिद्ध हैं; किन्तु सत्य बात यह है कि ये गणित, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, दर्शन, वैद्यक, तर्कशास्त्र, विज्ञान इत्यादि के प्रकाण्ड पण्डित थे। यूनानी दर्शनशास्त्र का इन्होंने विशेष अध्ययन किया था और अपने काल के सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ और ज्योतिषी माने जाते थे। १०७३ ई० में सुल्तान मलिकशाह की आज्ञानुसार उस समय के आठ सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञों ने मिल कर फ़ारसी पञ्चाङ्ग का सुधार किया था। उमर ख़ैयाम उनमें से एक थे। आप की बीजगणित की एक पुस्तक अभी तक मिलती है। दार्शनिक विषयों पर अरबी और फ़ारसी में लिखे हुए लेख मिस्र देश में छप चुके हैं। नदवी साहब के "ख़ैयाम" में भी ये समाविष्ट हैं। कहने का तात्पर्य यह है, कि उमर ख़ैयाम ने विज्ञान और विशेषतः गणितशास्त्र का प्रेमपूर्वक अध्ययन किया था और इन्हीं के कारण अपने काल और देश में कीर्ति

कमाई थी। जिन्होंने केवल इनकी रुबाइयों का नाम सुना है उनको यह जान कर आश्चर्य होगा कि फ़ारसी के पुराने इतिहास "चहार मक़ाला" में इनका उल्लेख कवियों के अध्याय में नहीं, ज्योतिषज्ञों के अध्याय में हुआ है। जिन ईरानी इतिहासकारों ने कवियों के जीवनचरित लिखे हैं उनमें से कुछ ने तो ख़ैयाम का नाम भी नहीं लिया; जिन्होंने इनके विषय में कुछ कहा भी है उन्होंने इनकी वैज्ञानिक क्षमता का ही आदरपूर्वक उल्लेख किया है।

"चहार मक़ाला", (चार वार्त्ताएँ), जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, १२वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अर्थात् उमर ख़ैयाम की मृत्यु के थोड़े ही दिन बाद लिखी गई थी और इसका लेखक निज़ामी अरूज़ी समरक़न्दी उमर ख़ैयाम से स्वयं परिचित था। इस पुस्तक में ख़ैयाम के विषय में निम्नलिखित दो घटनाओं का वर्णन है। निज़ामी अरूज़ी लिखता है—

"सन् ५०६ हिजरी (१११२–१३ ई०) की बात है कि ख़्वाजा इमाम उमर ख़ैयाम...बलख़ में...अमीर अबुसैद के मकान पर...ठहरे हुए थे। मैं भी उनकी ख़िदमत में हाजिर हुआ। मजलिसे इशरत गरम थी कि हुज्जतुल्हक़ हकीम उमर ख़ैयाम ने फ़रमाया कि मेरी क़ब्र एक ऐसे मुक़ाम पर होगी कि जहाँ हर साल दो दफ़ा दरख़्त मेरी क़ब्र पर फूल बरसाया करेंगे। मुझे यह बात मुहाल मालूम

हुई, लेकिन मैं यह जानता था कि ऐसा शख़्स बेहूदा बात नहीं कह सकता। फिर जब मैं सन् ५३० हिजरी में नैशापुर गया तो इससे कई साल पहिले हकीम साहब फ़ौत हो चुके थे...। चूँकि मुझ पर उनका उस्तादी का हक़ था इसलिए जुमःरात को मैं उनकी क़ब्र की ज़ियारत करने गया। ...। मैंने वहाँ जा कर देखा कि बाग़ की दीवार के नीचे आप की क़ब्र है और अमरूद और ज़रदालू के दरख़्तों की शाखें बाग़ से निकल कर आप की क़ब्र तक पहुँच गई हैं। इन दरख़्तों के शिगूफ़े झड़ झड़ कर आप की क़ब्र पर इस क़दर जमा हो गये थे कि क़ब्र नज़र न आती थी। इस पर मुझे वह पेशीनगोई याद आई जो आपने बलख़ में की थी। आँखों से बे-अख़्तियार आँसू निकल पड़े; क्योंकि मैंने बसीते आलम और इक़तारे रबये मस्कून में उसका सानी नहीं देखा। ख़ुदा वन्द तआला उनको अपने आग़ोश रहमत में जगह दे।"

(उल्था 'कासुलकराम' से)

यह क़ब्र अभी तक मौजूद है।

दूसरी घटना का वर्णन इस प्रकार है—

"सन् ५०८ हिजरी में जाड़े के दिनों में बादशाह ने ख़्वाजा सदरुद्दीन मुहम्मद बिन अल्मुज़फ़्फ़र के पास शहर मर्व में एक आदमी भेजा कि इमाम उमर ख़ैयाम को कहो कि हम शिकार को जाना चाहते हैं, कोई दिन ऐसे

मुक़र्रर करें कि जिनमें बारिश और बर्फ़ न हो। इन दिनों में हकीम साहब ख़्वाजा सदरुद्दीन के पास ही ठहरे हुए थे। ख़्वाजा साहब ने हकीम साहब से पैग़ाम शाही का ज़िक्र किया। हकीम साहब ने दो रोज़ तक इस मामले पर ग़ौर करके दिन मुक़र्रर कर दिया और ख़ुद जा कर बादशाह को तवारीख़ मुऐयनः (निश्चित दिन) से मुत्तलअ किया। चुनांचः बादशाह शिकार को रवाना हुआ। अभी थोड़ी ही दूर गया था कि बादल उठे और बर्फ़ गिरनी शुरू हुई। लोगों ने इस पर हकीम साहब की हँसी उड़ाई। बादशाह ने चाहा कि वापस हो जायँ लेकिन हकीम साहब ने कहा कि 'ख़ातिर जमा रखो अभी बादल हट जायेंगे और पाँच दिनों तक ज़मीन नम भी न होगी।' बादशाह शिकार को रवाना हुआ; बादल हट गये; पाँच दिन तक एक क़तरा पानी का भी अस्मान से न गिरा और लोगों ने बादल की शक्ल तक न देखी।"

(उल्था 'कासुल्कराम' से)

निज़ामी अरूज़ी ने एक और स्थान पर लिखा है कि उमर ख़ैयाम स्वयं फलित ज्योतिष में विश्वास नहीं करते थे।

मौलाना सुलेमान नदवी का मत है कि ख़ैयाम ने अपनी बीजगणित की पुस्तक युवावस्था में ही लिखी। इस समय

ख़ैयाम तुर्किस्तान में इमाम अबुताहिर सारी समरक़न्दी के आश्रय में थे। यहीं से इनकी विद्वत्ता और प्रतिभा की प्रसिद्धि हुई। इमाम साहब ने ही इनको शम्सुलमुल्क ख़ाक़ान बुख़ारा तक, जो ख़ैयाम को अपने साथ राज-सिंहासन पर बिठाया था, पहुँचाया। मलिकशाह सिल्जोक़ी की चहेती बीबी इसी शम्सुलमुल्क के वंश की थी। इससे अनुमान किया जाता है कि जब मलिकशाह ने पञ्चाङ्ग-सुधार के लिए विद्वानों को एकत्र किया तो ख़ैयाम को राजदरबार तक पहुँचने में कठिनाई न हुई होगी।

मलिकशाह के दरबार में ख़ैयाम ने बड़ी इज़्ज़त पाई। यह राजवैद्य और ज्योतिषी होने के अतिरिक्त बादशाह के नदीमों (हरीफ़े शराब या पास बैठने वाले बुज़ुर्ग) में से थे। यहीं पर रह कर इन्होंने पञ्चाङ्ग-सुधार किया और १०९२ ई० तक बादशाह के बनवाये हुए यन्त्रघर में काम करते रहे। सन् १०९२ ई० में मलिकशाह की मृत्यु हुई। देश में क्रान्ति और विप्लव फैल गये; विद्वानों और पण्डितों का आदर कम हो चला; और उमर ख़ैयाम का जीवन भी "अज्ञात" के परदे में जा छिपा।

इतिहासकारों ने ऐसी बहुत सी घटनाओं का वर्णन किया है जिनसे ख़ैयाम की अद्वितीय प्रतिभा का प्रमाण मिलता

है। स्थानाभाव के कारण यहाँ उन सब का उल्लेख नहीं किया जा सकता। कहते हैं कि इनकी स्मरण-शक्ति इतनी तेज़ थी कि एक पुस्तक को सात बार इस्फ़हान में पढ़ा और नैशापुर लौट कर उसको शब्दशः लिख दिया। मिलान करने पर केवल दो चार शब्दों का हेर फेर पाया गया। यह हज भी कर आये थे। हज से लौट कर थोड़े दिन बग़दाद में रहे किन्तु वहाँ किसी से मिलते जुलते न थे। तदनन्तर बलख़ गये और अन्त में नैशापुर लौट आये जहाँ इनकी मृत्यु हुई। इनकी मृत्यु के विषय में इनके समकालीन लेखक बेहक़ी (इमाम अबुबकर अहमद बिन हुसैन बिन अली) ने इनके दामाद मुहम्मद बग़दादी से सुनकर लिखा है कि यह इब्न सीना* की "शिफ़ा" नाम की पुस्तक पढ़ रहे थे; जब "वहदत" और "कसरत" (एकत्व और अनेकत्व) के अध्याय पर पहुँचे तो इन्होंने पुस्तक उठा कर रख दी। वसीयत की। नमाज़ पढ़ी। उस वक़्त से फिर न कुछ खाया,

---

*अबु अली इब्न सीना: Avicenna (९८०-१०३७ ई०) अपने समय का अद्वितीय विद्वान था। इसके विचार और ख़ैयाम के विचारों में बहुत समानता है। ओटो राथफ़ैल्ड (Otto Rothfeld) और नदवी ख़ैयाम को इब्न सीना का अनुयायी मानते हैं। "शिफ़ा" उसकी सब से महत्त्व-पूर्ण पुस्तक है।

न पिया। रात को नमाज़ पढ़ते पढ़ते यह कह कर प्राण त्याग दिये—

"हे ईश्वर! मैंने तुझे पहचानने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। तू मुझे क्षमा कर; क्योंकि तेरे विषय में जैसा कुछ भी ज्ञान (मारफ़त) मुझको है, तुझ तक पहुँचने का मेरा वही एक मात्र साधन है।"

रुबाइयाँ

जिन रुबाइयों के पीछे उमर ख़ैयाम का नाम आजकल संसार भर में फैला है, उनके विषय में भी निर्णयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। उमर के जीवन-काल में इन रुबाइयों को किसी ने संग्रहीत नहीं किया। सबसे पुराना संग्रह मुहम्मद बिन बद्रे जाजरमी का है। यह सन् १३४० ई० अर्थात् ख़ैयाम की मृत्यु के लगभग २१० वर्ष बाद का है। इसमें केवल १३ रुबाइयाँ हैं। बोडलियन लाइब्रेरी ऑक्सफर्ड की पाण्डुलिपि सन् १४६० ई० की है। इसमें १५८ छन्द हैं। इसके अतिरिक्त लगभग २० और संग्रह पाये जाते हैं। कुछ मुद्रित हो चुके हैं; शेष हस्तलिखित हैं। निम्न-लिखित तालिका से पता चलेगा कि भिन्न भिन्न संग्रहों में कितना अन्तर है—

	संग्रह का पता	छन्दों की संख्या
१.	ब्रिटिश म्यूज़ियम-लण्डन; पाँच संग्रह	क्रमश: ४६०,२६६, ५४५,४००,४२३
२.	पैरिस में छ: संग्रह	क्रमश: २१३, ३४६, ७६, ८, २५८,३१
३.	इण्डिया आफ़िस लाइब्रेरी, लन्दन; दो संग्रह	क्रमश: ५१२, ३६२
४.	बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी	५१६
५.	बाँकीपुर (पटना) ख़ुदाबख़्श ओरियन्टल लाइब्रेरी	६१३
६.	देसना (ज़िला पटना); नदवी के "ख़ैयाम" में प्रकाशित	२०५
७.	फ़ेडरिक रोज़न द्वारा प्रकाशित (१९२५ ई०; कावियानी प्रेस, बर्लिन)	३२९
८.	अमृतसर में मुद्रित	९२४
९.	टेहरान में मुद्रित	एक हज़ार से अधिक

जो संग्रह जितना नया है उसमें उतनी ही अधिक रुबाइयाँ संग्रहीत हैं। जो रुबाइयाँ उमर ख़ैयाम के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं यदि उन सब को एकत्र किया जाय तो दो-तीन हज़ार तक नम्बर पहुँच जाय। परन्तु वास्तव में ख़ैयाम की बनाई हुई रुबाइयाँ ३००–४०० से अधिक न होंगी।

अच्छी कविता मात्र जन-साधारण में प्रचलित हो जाती है परन्तु लोकपरम्परा कविता को याद रखती है, कवि को भूल जाती है। और, सौ दो सौ वर्ष पीछे यदि कोई मनुष्य इन लोकप्रिय कविताओं का संग्रह करता है तो भिन्न भिन्न कवियों की कविताओं का पृथक्करण असम्भव हो जाता है—विशेषत: यदि रुबाई की भाँति कविता का छन्द ऐसा लोकप्रिय हो कि छोटे बड़े सहस्रों कवियों ने उसी छन्द में एक ही विषय पर कविता की हो। कभी कभी निम्न-श्रेणी के लेखक अपनी रचनाओं का गौरव बढ़ाने की इच्छा से जानबूझ कर उनको लोकमान्य कवियों की रचना में घुसेड़ देते हैं। कबीर, विद्यापति, सूरदास इत्यादि की रचनाओं के विषय में हिन्दी-साहित्य-संसार का अनुभव भी बहुत कुछ ऐसा ही है। उमर ख़ैयाम भी लोक और काल के इस अत्याचार से नहीं बचे। इनकी रुबाइयों में विशेष संमिश्रण इस लिए भी हुआ है कि १३वीं शताब्दी से ही इनकी रुबाइयों के गूढ़ार्थ के विषय में मतभेद चला आता

है। "सूफ़ी" और "रिन्द" दोनों ही ने इनको अपनाया है। अपने अपने पक्षपात के अनुसार दोनों ही ने इनकी "मदिरा" का रसास्वादन किया है और अपने अपने मत के समर्थन की इच्छा से मनमानी रुबाइयाँ ख़ैयाम की असली रुबाइयों में जोड़ दी हैं। ऐसी अवस्था में यह कहना कि कितनी रुबाइयाँ वास्तव में ख़ैयाम ने लिखीं नितान्त असम्भव है। इसी सम्बन्ध में फ़्रेडरिक रोज़न* लिखते हैं—

"लगभग एक हज़ार रुबाइयों की यत्नपूर्वक जाँच करने के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि २३ रुबाइयों को छोड़ कर अन्य रुबाइयाँ उमर ख़ैयाम की ही हैं, यह बात प्रमाण-पूर्वक नहीं कही जा सकती। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि शेष रुबाइयों में से बहुत सी वास्तव में ख़ैयाम ही की बनाई हुई हैं।"

जब कि यह कहना असम्भव है कि वास्तव में ख़ैयाम ने कौन कौन सी रुबाइयाँ लिखीं, तब इन रुबाइयों के आधार

***डाक्टर फ़्रेडरिक रोजन** (Frederich Rosen) **जिनका उल्लेख पहिले भी किया गया है जर्मनी के प्रसिद्ध फ़ारसी के विद्वान हैं। उपरोक्त अवतरण उनकी** "The Quatrains of 'Omar Khayyām (Methuen & Co. London), 1930, **की भूमिका में से लिया गया है।**

पर उनके मत और सिद्धान्तों का निरूपण करना अन्याय होगा। इसके अतिरिक्त ध्यान देने योग्य बात यह है कि "रुबाई" मुक्तक काव्य का एक रूप है। इसमें क्रमबद्ध भाव-विकास और प्रबन्धात्मक विचार-योजना के लिए स्थान नहीं। किसी भी भाव को चुभती हुई भाषा में कह देना, यही रुबाई का उद्देश्य है। इसमें भाषा की प्रगति और शब्द-चातुर्य मुख्य ठहरते हैं और भाव-गौरव गौण। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उमर ख़ैयाम ने अपनी रुबाइयाँ मित्रों के सम्मेलनों में विशेष कर मनोरञ्जनार्थ कही होंगी। तो फिर ऐसी रुबाइयों में से दो एक रुबाई छाँट कर उनके आधार पर कवि को "आस्तिक" या "नास्तिक" कह देना उचित नहीं।

तथापि उमर ख़ैयाम के धार्मिक सिद्धान्तों के विषय में विद्वानों में बराबर मतभेद चला आता है। एक ओर लोग कहते हैं कि ख़ैयाम मुसल्मानी धर्माचार में विश्वास न करते थे। जिस शराब का छूना तक वर्जित है, वे उसी के सच्चे उपासक थे और उनकी रुबाइयाँ "ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्" वाले आधिभौतिक सुखवाद के सिद्धान्त का उपदेश देती हैं। दूसरी ओर लोगों की राय है कि ये पहुँचे हुए "सूफ़ी" थे और हाफ़िज़ आदि अन्य फ़ारसी कवियों की भाँति इनकी 'मदिरा' ईश्वर-प्रेम का उपनाम मात्र है।

जैसा कि हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं, यह एक ऐसा विवादात्मक विषय है कि जिसमें लकीर खींच कर कह देना कि अमुक मत ठीक है और अमुक मत बे-ठीक, नितान्त असम्भव है। ख़ैयाम की दार्शनिक और आध्यात्मिक रचनाओं का विशेष अध्ययन करके मौलाना सुलेमान नदवी ने यह नतीजा निकाला है कि यह महाशय "सूफ़ी"* थे; अबुअली इब्न सीना के अनुयायी थे। यूनानी दर्शनशास्त्र का अध्ययन कर चुके थे और उसमें श्रद्धा रखते थे। इसलिए, यद्यपि इनके विचारों में कट्टर धर्माचार का पक्षपात नहीं पाया जाता, ये सदाचारी और धर्म-भीरु मुसलमान थे। ऑटो राथफ़ैल्ड (Otto Rothfeld) ने भी अपनी Umar Khayyam and his Age (उमर ख़ैयाम और उनका काल) नामक पुस्तक में ख़ैयाम को इब्न सीना का अनुयायी माना है। परन्तु राथफ़ैल्ड ख़ैयाम को इब्न सीना की भाँति "मदिरा" और "मदिराक्षी" का पुजारी समझता है। हम उमर ख़ैयाम को कोरा "पियक्कड़" या नास्तिक मानने के लिए तैयार नहीं। हमारे विचार में ख़ैयाम सदाचारी थे। ईश्वर की सत्ता में उनका अनन्य विश्वास था। यदि बेहक़ी का कथन सत्य है तो इनकी श्रद्धा का प्रमाण इनके अन्तिम शब्दों में ही

---

*"सूफ़ी" का साधारण अर्थ है "सदाचारी"।

प्रत्यक्ष है। हाँ, लोक-दिखावा और पाखण्ड को धर्म नहीं समझते थे। ख़ैयाम शराब पीते थे या नहीं, यह एक छोटी सी बात है। समकालीन इतिहासों को देखने से पता चलता है कि उमर ख़ैयाम के समय में बहुत से लोग शराब पीते थे। अमीरों और शायरों की मजलिसों में तो शराब के दौर ख़ास तौर पर चलते थे। नदवी साहब ने स्वयं लिखा है—

"ख़ैयाम के कमसिन मुआसिर (समकालीन) हकीम सनाई....के एक बयान से मालूम होता है कि उनके ज़माने में शराबनोशी (मदिरापान) गोया हकीम व फ़िलसफ़ी होने की सनद थी। सनाई ने ख़ुरासान के क़ाज़ी ....की मदह (प्रशंसा) में जो तरकीब बन्द लिखा है उसमें क़ाज़ी उल्क़ज़्ज़ाते ख़ुरासान (ख़ुरासान के सब से बड़े क़ाज़ी) के मुँह से यह कहलवाया है कि 'ऐ सनाई, तुम हकीम भी नहीं; अगर हकीम होते तो शराब पीते।' सनाई जवाब में कहते हैं कि अगर मैं मस्ते शराब हो कर हिकमत पाऊँ तो बेअक़्ल गदहा क्यों न बन जाऊँ।"

जब यह हालत थी तो हकीम ख़ैयाम जो कि बराबर अमीरों और बादशाहों की मजलिसों में शामिल होते थे शराब पीने से न बचे होंगे। निज़ामी अरूज़ी ने जिस "मजलिसे इशरत" का बयान किया है उसकी इशरत में भी शराब का रङ्ग साफ़ नज़र आता है।

रुबाइयों का अनुवाद

हिन्दी भाषा-भाषी शिक्षित-समाज उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का प्रथम परिचय अधिकतर फ़िट्ज़-जेराल्ड् (Fitzgerald) के अंग्रेज़ी अनुवाद से पाते हैं। और अबतक जितने अनुवाद हिन्दी के मासिक पत्रों या पुस्तकरूप में प्रकाशित हुए हैं वे सभी इसी अंग्रेज़ी अनुवाद पर आधारित हैं। केशव पाठक की रुबाइयां और "बच्चन" की "ख़ैयाम की मधुशाला" फ़िट्ज़-जेराल्ड् के प्रथम संस्करण के अनुवाद हैं और पं० बल्देव प्रसाद मिश्र का "मादक प्याला" उसके चौथे संस्करण का। मिश्र जी ने कछ उन रुबाइयों का भी अनुवाद किया है जिनका फ़िट्ज़-जेराल्ड् के अनुवाद से कोई सम्पर्क नहीं। अन्य भाषाओं में से श्रीयुक्त कान्तिचन्द्रघोष-कृत बङ्गला अनुवाद भी फ़िट्ज़-जेराल्ड् के प्रथम संस्करण का उल्था है। हाँ; उर्दू में उमर ख़ैयाम की मूल रुबाइयों का अनुवाद हमने देखा है; परन्तु यह बहुत अच्छा नहीं। न तो इसमें फ़ारसी भाषा का प्राकृतिक पद-लालित्य है और न मूल रुबाइयों का प्रसाद गुण।

फ़िट्ज़-जेराल्ड् की 'रुबाइयों' को अनुवाद कहना भाषा के साथ बलात्कार करना है। उन्होंने ख़ैयाम के भावों को लेकर नये सिरे से कविता की है; या यों कहिए कि मूल रुबाइयों में जो रङ्ग-बिरङ्गे और छोटे-बड़े रत्न थे उन्हें चुन कर कला-कुशल जड़िया की भाँति जड़ कर ऐसा अमूल्य

आभूषण तैयार किया है कि जिसको पहिन कर कविता-कामिनी फूली नहीं समाती। बहुत से रत्न ज्यों के त्यों रखे हैं; बहुत से विरूप और कदाकार हीरों को तराश कर अपूर्व सौन्दर्य और चमत्कार की सृष्टि की है; यही नहीं, कहीं कहीं तो नये भाव लेकर अपनी ओर से जोड़ दिये हैं और बहुत से स्थानों में इतना रूपान्तर कर दिया है कि मूल भाव पहिचाने नहीं जाते। किसी कवि की कविता के साथ ऐसा स्वेच्छाचार करना कहाँ तक क्षम्य है, इसके विचार करने की यहाँ पर अधिक आवश्यकता नहीं है। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर इन रुबाइयों के बङ्गला अनुवाद के विषय में लिखते हैं—

এ রকম কবিতা এক ভাষা থেকে অন্য ভাষার ছাঁচে ঢেলে দেওয়া কঠিন। কারণ এর প্রধান জিনিষটা বস্তু নয়, গতি। ফিট্জ্‌-জেরাল্ডও তাই ঠিকমত তর্জ্জমা করেন নি—মূলের ভাবটা নিয়ে সেটাকে নূতন করে সৃষ্টি করেছেন। ভাল কবিতামাত্রকেই তর্জ্জমায় নূতন করে সৃষ্টি করা দরকার।

ऐसी कविता को एक भाषा से लेकर दूसरी भाषा के ढाँचे में ढाल देना कठिन है। क्योंकि इस कविता का प्रधान गुण "वस्तु" नहीं "गति" है। फ़िट्ज़-जेराल्ड् ने भी इसीलिए ठीक ठीक तर्जुमा नहीं किया; मूल के भावों को लेकर उनकी नये तौर पर सृष्टि की है। अच्छी कविता मात्र की तर्जुमा में नये तौर पर सृष्टि करना आवश्यक है।

और फ़िट्ज़-जेराल्ड् की प्रणाली के औचित्य का सब से बड़ा प्रमाण उनके अनुवाद की सफलता है।

जो सलूक फ़िट्ज़-जेराल्ड् ने उमर ख़ैयाम के साथ किया है, वही सलूक हमने फ़िट्ज़-जेराल्ड् के साथ करने का प्रयत्न किया है। उनके चौपदों को तोड़-मरोड़ कर नये सिरे से सृष्टि करने का बीड़ा उठाया है, और फ़िट्ज़-जेराल्ड् की तरह "मुक्तक" काव्य का रूप रखते हुए भी, प्रबन्धात्मक रूप को भुलाया नहीं है। जहाँ तक हो सका है उमर ख़ैयाम के मूल भावों को प्रधानता दी है; और कुछ ऐसी रुबाइयाँ भी जोड़ दी हैं जो फ़िट्ज़-जेराल्ड् के अनुवाद से सम्बन्ध नहीं रखतीं। हमें कहाँ तक सफलता मिली है, इसका न्याय हमारे ऊपर नहीं, पाठकों के ऊपर है। "निज कवित्त केहि लाग न नीका"। परन्तु हम अपनी त्रुटियों को भली भाँति जानते हैं। खड़ीबोली के पण्डितों को तो हमारी भाषा कई स्थानों में खटकेगी। "फिर" के स्थान में "फेर"; "जहाँ" के स्थान में "जँह"; और "नित", "बहु", "सँग" इत्यादि शब्दों के प्रयोग पर वे अवश्य अप्रसन्न होंगे। पिङ्गल की कसौटी पर भी हमारे सब छन्द एक से नहीं उतरेंगे। अपनी अयोग्यता के अतिरिक्त हम इन त्रुटियों का क्या जवाब दें? किन्तु सम्भव है कि हिन्दी भाषा के वे हितैषी, जो सूर, तुलसी, कबीर और देव की स्वच्छन्द-गामिनी भाषा

को व्यर्थ-नियमों में जकड़ी हुई और कवि की सुधावर्षिणी जिह्वा से उतर कर विद्यार्थियों के कोषों और कुञ्जियों में पड़ी हुई नहीं देखा चाहते, सम्भव है वे हमारी उच्छृङ्खलता पर प्रसन्न भी हों।

पाठक यह न भूलें कि हमने फ़िट्ज़-जेराल्ड् के ख़ैयाम की रुबाइयों का "अनुवाद" किया है; और मूल ख़ैयाम चाहे 'सूफ़ी' हों या 'शराबी', फ़िट्ज़-जेराल्ड् उनको शराबी ही समझते थे। उमर के सिद्धान्तों को उन्होंने "The original irreligion of thinking men" अर्थात् "विचारशील मनुष्यों की स्वाभाविक धर्महीनता" बताया है और अन्त में लिखा है--

"However, as there is some traditional presumption and certainly the opinion of some learned men, in favour of Omar's being a Sūfi......those who please may so interpret his wine and cup-bearer...............Other readers may be content to believe with me that while the wine Omar celebrates is simply the juice of the grape, he bragged more than he drank of it......"

अर्थात्

"परन्तु, क्योंकि लोक-भावना थोड़ी बहुत उमर के सूफ़ी होने के पक्ष में है और निस्सन्देह कई विद्वान उमर को सूफ़ी ही समझते हैं, जो पाठक चाहें उमर के 'प्याले' और 'साक़ी' को सूफ़ियों का 'प्याला' और 'साक़ी' समझ लें। ...अन्य पाठक मेरी इस धारणा से सन्तुष्ट रहें कि उमर ने जिस मदिरा का अभिनन्दन किया है वह केवल अंगूर का रस ही है; उमर उसको पीता कम था, बखानता अधिक था......।"

जो पाठक फ़िट्ज़-जेराल्ड् के चौपदों में आध्यात्मिक मदिरा का पान करते हों, वे निस्सन्देह हमारे अनुवाद में भी आध्यात्मिक मदिरा से वंचित नहीं रहेंगे।

रुबाइयों की लोकप्रियता

उमर के निजी सिद्धान्तों को जाने दीजिए। यह बात विचारने योग्य है कि उनकी रुबाइयाँ और विशेष कर फ़िट्ज़-जेराल्ड् का अनुवाद इतना लोकप्रिय क्यों है ? आजकल विज्ञान का युग है और प्रयोगात्मक विद्याओं का आदर है। जो बात तर्क की कसौटी पर सच्ची उतरती है उसी को हम बहुमूल्य समझते हैं; जो बुद्धिगोचर और इन्द्रियगोचर होता है उसी का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। भक्ति को अन्धविश्वास कह कर ठुकराते हैं और श्रद्धा को मूर्खता समझते

हैं। परन्तु, पारलौकिक विषयों के चिन्तन में तर्कमात्र कभी सफल नहीं हो सकता। अध्यात्म शास्त्र का सिद्धान्त है—

अचिन्त्याः खलु ये भावाः न तांस्तर्केण साधयेत्।

भक्ति, श्रद्धा और विश्वास का होना आवश्यक है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी बुद्धिमार्ग की कठिनाइयों को दुर्निवार समझ कर भक्ति का उपदेश दिया है और कहा है कि बुद्धिमार्ग द्वारा प्राप्त हुए ज्ञान को स्थिर रखने के लिए भी "भक्ति" की आवश्यकता है—

"ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका,
साधन कठिन न मन कहुँ टेका।
करत कष्ट बहु पावै कोऊ,
भगति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ।"

* * *

"तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई,
रहि न सकै हरि भगति बिहाई।"

फल यह होता है कि 'तर्क' का अड़ियल टट्टू शास्त्रों और महात्माओं के बताए हुए सन्मार्ग पर चलने से हटता तो है, परन्तु दूसरा सुगम मार्ग ढूँढ़ने में असमर्थ होता है। यह और बात है कि इधर उधर धक्के खाकर, मानसिक व्यथा अथवा अन्य किसी प्रकार की ईश्वरीय प्रेरणा का कोड़ा खाकर, वह अन्त में तर्क-हठ को छोड़ दे और जिस 'भक्ति' को अन्धविश्वास

समझता था उसी को अङ्गीकार कर ले; परन्तु प्रारम्भ में छटपटाता अवश्य है। कुछ अभागे 'बुद्धिमन्त' जीवन-पर्यन्त छटपटाते रहते हैं—

ज्यों ज्यों सुरझि भज्यौ चहत, त्यों त्यों उरझत जात।

'बुद्धि' के इस दुरन्त आग्रह की ओर इक़बाल ने यों इशारा किया है—

अच्छा है दिल के साथ रहे पासबाने अक़्ल,
लेकिन कभी कभी उसे तनहा भी छोड़ दे।

पाठकगण ! ये रुबाइयाँ इन्हीं 'अक़्ल' के मारे 'अक़्लमन्दों' की आहें हैं। संसार स्वप्न है; जीवन क्षण-भङ्गुर है। कहाँ से आये हैं, कहाँ जायेंगे—कौन जानता है ? जितने ज्ञानी और पण्डित हो चुके हैं, क्या उनकी विद्या और पाण्डित्य से कुछ लाभ हुआ है ? जिसको जो सूझता है, बक जाता है—'सत्य' का पता किसी को नहीं। कैसे कैसे पुरुषार्थी और बली हो चुके हैं; उनका पुरुषार्थ और बल किस काम आया ? युगों से मनुष्य सर पटक रहा है परन्तु प्रकृति के अटल नियमों में कुछ अन्तर नहीं पड़ा। "सुबह होती है शाम होती है, उम्र यों ही तमाम होती है।" क्या धनी, क्या निर्धनी, क्या पापी और क्या पुजारी, क्या सभी एक ही रास्ते नहीं जाते ? फिर स्वर्ग और नरक, पाप और पुण्य के पचड़े में क्या रखा है ?

बीत गये युग पोथी पढ़ते करते "अस्ति" "नास्ति" की खोज
जीवन की यह विषम पहेली कोई किन्तु न पाया बूझ।

तो क्या मेरे-तुम्हारे प्रयत्न से यह पहेली बूझ जायगी ? नहीं। फिर चिन्ता करने से क्या लाभ ? केवल जो है, सो है; इसे अङ्गीकार करो। कौन ? कहाँ ? क्यों ? कैसे ? के झंझट में मत पड़ो।

जब ये विचार सहसा सामने आते हैं तो प्रत्येक "विचार-शील" मनुष्य फड़क उठता है, क्योंकि उसकी अन्तरात्मा में इन्हीं विचारों की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। यही, फ़िट्ज़-जेराल्ड् के शब्दों में, विचारशील मनुष्यों की स्वाभाविक धर्म-हीनता है; यही इन रुबाइयों की लोकप्रियता का कारण है।

अब रही मदिरा। इन रुबाइयों की हृदय-ग्राहकता के लिए मदिरा अनिवार्य नहीं; बिना मदिरा के भी ये लोक-प्रिय होतीं। परन्तु मदिरा ने 'सोने में सुगन्ध' का काम किया है।

गीता में भगवान् ने कहा है—

अज्ञश्च, अश्रद्धानश्च, संशयात्मा विनश्यति
नायं लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः
(अ० ४, श्लोक ४०)

"जिसको 'ज्ञान' नहीं; जिसमें 'श्रद्धा' नहीं; जो संशयात्मा है; उसका नाश हो जाता है। संशयग्रस्त को न यह लोक है और न परलोक; और न सुख ही है।"

ख़ैयाम इन्हीं अभागे संशयात्माओं में से एक थे। वैज्ञानिक थे; गणितज्ञ थे। गणित के सिद्धान्तों से अध्यात्म का साधन करना चाहते थे। पैमाना और परकाल लेकर 'शून्य' की माप करने चले थे। फल वही हुआ जो होना था।

बढ़कर बुद्धियान पर मैंने देखा सभी गगन-पाताल
ज्ञान-सिन्धु में पैठ निकाले अति अमूल्य रत्नों के जाल
जीवन के इस जटिल जाल की, सुलझाईं औ' ग्रन्थि असंख्य
किन्तु न सुलझा पाया प्रियतम, कुटिल काल की ग्रन्थि कराल।

फिर क्या करते ?

कुटिल काल की ग्रन्थि न सुलझी मिला न जीवन में कुछ सार,
अन्धी बुद्धि ज्ञान-दीपक ले ढूँढ़ फिरी सारा संसार।
मन की प्यास बुझाने को तब, पाने को सुख दुख का भेद
शरण गही, प्रियतम, मैंने इस मिट्टी के प्याले की हार।

एक जगह अपने मदिरा-पान का दोष-निवारण यों करते हैं—

बैर न मुझे धर्म से है कुछ, न कुछ विशेष पाप से प्रीति
न कुछ बुरी ही लगती मुझको, प्रिय, बेबात लोक की रीति।
मैं जो प्याले पर मरता हूँ सो बस इसी लिए 'ख़ैयाम'
एक घड़ी को बिसर जाय यह नियति चक्र की निर्मम नीति।

ख़ैयाम के निराशावाद को ध्यानपूर्वक देखा जाय तो भगवान् के उपरोक्त वाक्य का पूर्ण समर्थन हो जाता है।

जो ज्ञानी हैं; जिनमें श्रद्धा है; जो 'प्रेम-सुरा' का रसास्वादन कर चुके हैं; उनको ये रुबाइयाँ अपनी पुण्य भावना में और भी दृढ़ करेंगी। रहे उमर, और उमर जैसे संशयात्मा—हम को पूर्ण विश्वास है कि ईश्वर की असीम अनुकम्पा में उनको भी अवश्य स्थान मिलेगा—

"पारसाओं में चला ज़ाहिद जो उसको ढूँढ़ने,
मग़फ़रत बोली, 'इधर आयें, गुनहगारों में हूँ'।"

रुबाइयाँ

१

जागो मित्र ! भरो प्याला, लो, वह देखो प्राची की ओर
राजअटारी पर चढ़ता रवि फेंक अरुण किरणों की डोर
नभ के प्याले में दिनमणि को माणिक-सुधा ढालते देख
कलियाँ अधरपुटों को खोले ललक रहीं आनन्द-विभोर ।

२

पौ फटते ही मधुशाला में, गूँजा शब्द निराला एक,
मधुबाला से हँस हँस कर यों कहता था मतवाला एक—
"स्वाँग बहुत है रात रही पर थोड़ी; ढालो, ढालो शीघ्र
जीवन ढल जाने के पहिले ढालो मधु का प्याला एक ।"

३

और कान में भनक पड़ी जब ऊँघा मैं पी कर दो चार
कोई कहता था पुकार कर, "मधुशाला का खोलो द्वार;
केवल चार घड़ी रहना है हम को, क्यों करते हो देर ?
एक बार के गये हुए फिर, लौटेंगे न दूसरी बार।"

४

लो फिर आई है वसन्त ऋतु, हरी हुई फिर मन की आस
व्यथित हृदय कहता है चल कर करें कहीं एकान्त-निवास—
जहाँ लता-तरुओं के पत्ते हिलते ज्यों मूसा का हाथ
और सुगन्ध सुमन-माला की उठती ज्यों ईसा का श्वास।

५

देखो आज खिले हैं सुर्ख़ से लाखों मधु-कलियों के गात—
किन्तु कहो तो कल इन में से कितने फेर खिलेंगे तात ?
बूँद-बूँद टपका जाता, हा ! जीवन का मधु-रस, ख़ैयाम;
एक एक कर झड़े जा रहे पक पक कर जीवन के पात ।

६

कैक़ोबाद, कैख़ुसरो, दारा, रुस्तम और सिकन्दर वीर—
क्या जानें अब कहाँ छिपे वे बड़े बड़े योद्धा रणधीर ?
किन्तु आज भी विमल वारुणी में जगती माणिक की ज्योति,
और चित्त को चञ्चल करता अब भी वन का स्निग्ध समीर

७

अब भी, झुकी लदी गुच्छों से, अंगूरों की डाली देख--
फूली, छकी, ओस की धोई नव गुलाब की प्याली देख--
भूली, अभी-अधखिली कलियों की चितवन की लाली देख
"पीओ, पीओ" कहती फिरती है बुलबुल मतवाली, देख।

८

ला, ला, साक़ी! और, और ला; फिर प्याले पर प्याला ढाल;
धर रख, गूढ़-ज्ञान-गाथा को, व्रत-विवेक चूल्हे में डाल।
सिखला रहा 'त्याग' की पट्टी, कैसा ज्ञानी है तू मित्र!--
नहीं सूझता क्या तुझको यह यौवन, यह मधु, यह मधुकाल?

९

यों तो मैं भी नित्य सोचता हूँ अब खाऊँगा सौगन्ध—
इस प्याले का मोह तजूँगा, पीना कर दूँगा अब बन्द।
किन्तु आज तो प्रकृति-प्रिया है आई सज फूलों का साज
आज वसन्तोत्सव है प्रियतम, आज न पीऊँ तो सौगन्ध !

१०

आज वसन्तोत्सव है प्रियतम ! फूलों में फूटा रसराज
मन की कसर निकालूँगा सब, तज कर लोक-लीक की लाज—
पहिला प्याला पी, कर दूँगा बाँझ बुद्धि बुढ़िया का त्याग
चढ़ा दूसरा, वरण करूँगा, वरुण-नन्दिनी को फिर आज !

११

नित्य रहेगा नहीं यहाँ, प्रिय, जीवन का यह डेरा कुछ;
प्राण-बटोही उठ जायेंगे करके रैन-बसेरा कुछ।
यहाँ पड़े सोते हो जब तक करते हो "तेरा"-"मेरा"
जीवन-स्वप्न टूट जाने पर, 'मेरा" रहे न "तेरा" कछ ।

१२

हम ही जब न रहे तो क्या फिर बलख़-बुख़ारा, क्या बग़दाद ?
प्याला ही जब ढुलक गया तो क्या खट्टा, क्या मीठा स्वाद ?
खाओ, पीओ, मौज करो—दिन दो के जीवन में ख़ैयाम
भला बुरा क्या, क्या सुख-दुख, औ' पाप-पुण्य की क्या बुनियाद?

१३

प्रियतम ! आओ हम तुम दोनों, पाप-पुण्य की चर्चा छोड़,
विजन-विपिन में चलो चल बसें इस झंझट से नाता तोड़—
राजा-रङ्क, धनी-निर्धन की जहाँ न कोई करता पूछ,
और तृणासन कर लेता है जहाँ सुवर्णासन की होड़।

१४

दो मधूकरी हों खाने को, मदिरा हो मनमानी जो,
पास धरी हो मर्म-काव्य की पुस्तक फटी-पुरानी जो,
बैठ समीप तान छेड़े, प्रिय, तेरी वीणा-वाणी जो,
तो इस विजन-विपिन पर वारूँ, मिले स्वर्ग सुखदानी जो।

१५

कोई स्वर्ग-लोक के सुख को कहता है अतोल, अनमोल;
कोई राजपाट के ऊपर करता है मन डाँवाडोल;
गाँठ बाँध ले मूर्ख नक़द के नौ, तेरह उधार के छोड़--
यों तो लगते हैं सुहावने सब को सदा दूर के ढोल।

१६

गाँठ बाँध ले मूर्ख नक़द के, 'फिर' की आशा पर मत भूल;
सुन तो सही कह रहा है क्या हँस हँस कर गुलाब का फूल--
"जो सु-वर्ण लाता हूँ जग में चलने से पहिले ही, मित्र !
उपवन में बखेर जाता हूँ, रत्ती-रत्ती झाड़ दुकूल।"

१७

हा ! मिट्टी में मिल जाती हैं आशा सभी हमारी, तात।
कभी खिली भी तो बस जैसे दो दिन की उजियारी रात !
हीरा-मोती-लाल, धरा-धन-धाम-सम्पदा जितनी, हाय !
क्षणिक मरुस्थल के तुषार सी उड़ जाती हैं सारी, तात !

१८

और, मरुस्थल यह जीवन है, लेना सतर्कता से काम,
काल-क़ज़ाक़ प्राण हरने की घात लगाता आठो याम।
सुख का प्यासा मृग-अबोध-मन, रखना इसको ख़ूब सँभाल,
स्वर्ग-नरक की मृग-तृष्णा में बहक न कहीं जाय ख़ैयाम।

१६

स्वर्ग ? स्वर्ग है सफल साधना के सुख ही का क्षणिक प्रवाह,
और नरक है केवल अपनी विफल-वासना का उर-दाह ।
पापी और पुजारी, निर्धन-धनी, मूर्ख औ' ज्ञानी, हाय !
हमने तो सब ही को देखा, जाते अन्त एक ही राह ।

२०

वह कङ्गाल जिसे जीवन में जुटे न दाने भी दो सेर—
राजा जो न ख़र्च कर पाया, भरे ख़ज़ानों के भी ढेर—
दोनों 'माटी' मिले, किसी का बना न कोई सोना, जो कि
एक बार के गड़े हुए को कोई खोद निकाले फेर ।

२१

इस टूटी-फूटी सराय में जिसको कहते हैं संसार;
जन्म मृत्यु दोनों हैं जिसके, आने-जाने के दो द्वार;
कैसे कैसे बली ठाठ से ठहरे यहाँ, अन्त में किन्तु,
कूच कर गये बजा बजा कर अपनी नौबत दिन दो-चार।

२२

जा कर देख गगन-चुम्बी वे गये राज-प्रासाद कहाँ,
रहते बड़े बड़े नामी, जमशेद जहाँ, बहराम जहाँ;
उल्लू बोल रहे हैं उनमें कहीं, कहीं उड़ती है धूल
भग्न-कँगूरों पर बैठे अब, काक पूछते "क-आँ ?", "क-हाँ ?"

२३

फूलों से तुलती थीं नित-प्रति जो वराङ्गनाएँ सुकुमार
दुर्भर था जिनको सँभालना अपनी शोभा ही का भार;
और लाड़ के लाले-पाले उनके प्रेमी राजकुमार,
हाय ! फल की सेजों पर ही करते थे जो नित्य विहार—

२४

वे ही कठिन भूमि-शय्या पर आज धूल की चादर ओढ़
सोये हैं चिर-निद्रा में, प्रिय, जग के सुख-दुख से मुख मोड़ ।
पशुओं की ठोकर खा कर भी नहीं टूटती उनकी नींद ।
हाय ! क्रूर-कण्टक निकले हैं उनके मृदु अङ्गों को फोड़ ।

२५

जहाँ जहाँ पर गिरा चुके हैं, अपना उष्ण रक्त भूपाल,
मैं तो जानूं वहीं वहीं पर उगते हैं प्रसून ये लाल।
और खिले इस क्यारी में जो चम्पक के ये मनहर फूल
इनकी जड़ में निश्चय होंगे किसी सुमुखि के गोरे गाल।

२६

नदी किनारे उगती औ' जो हरी हरी मख़मल-सी दूब;
हम तुम जिस पर चलते हैं, प्रिय! —चलना इसे बचाकर ख़ूब।
सम्भव है यह कभी रही हो किसी युवक-आनन की रेख;
सम्भव है इसने भी लूटा हो सुख अधर-सुधा में डूब।

२७

त्यागो सोच-विचार आज तुम, प्रियतम, भर लाओ यह प्याला,
धुल जायें जो भय भविष्य के, बुझ जाये अतीत की ज्वाला !
कल का कौन भरोसा ? कल को मैं भी वहीं पहुँच जाऊँ मत
बीते सात हज़ार वर्ष से जग को जहाँ काल ने डाला ।

२८

अपने सङ्गी-स्नेही जो थे, प्रियतम, आज सभी देखौ न ?
एक एक जीवन का मधुरस पी पी कर सोये हैं मौन ।
और आज उनकी मिट्टी पर हम-तुम जो करते हैं खेल
हाय ! हमारी मिट्टी पर कल क्या जाने खेलेगा कौन ?

२६

हाथ लगे सो मौज लूट लो, प्रियतम, यौवन में दिन तीन,
हाय ! अन्त में तो होना है सब ही को अनन्त में लीन।
हाय ! अन्त में तो क्या जाने कहाँ पड़े होंगे ख़ैयाम—
सुरा-हीन, सङ्गीत-हीन, सङ्गिनी-हीन औ' अन्त-विहीन ?

३०

जो मन्दिर-मसजिद में करते सगुण-निगुण का अनुसन्धान,
और मकतबों में पढ़ते जो रीति-नीति का पूरा ज्ञान—
दोनों ही को सम्बोधित कर, मित्र ! निराशा-निशि का दूत
कहता है, "क्यों भटक रहे हो मिथ्या-पथ में ओ नादान ?"

३१

जन्म-मरण के रुद्ध द्वार पर, गये न कितने ज्ञानी जूझ
खोल न पाये लाख यत्न कर, चली न एक किसी की सूझ ।
बीत गये युग "पोथी" पढ़ते करते "अस्ति-नास्ति" की खोज
जीवन की यह विषम पहेली कोई किन्तु न पाया बूझ ।

३२

बड़े बड़े विज्ञान-विशारद, वेदान्ती औ' शास्त्र-समर्थ,
एक एक पद के करते थे बीस बीस जो अद्भुत अर्थ—
काल बली का धक्का खाकर हवा हो गया उनका ज्ञान
पड़े खेह खाते हैं देखो, खो कर यौवन के दिन व्यर्थ ।

३३

खोओ मत यौवन के दिन, प्रिय ! आओ, लो पी लो दो घूँट
निश्चय तो बस एक बात है—पल में प्राण जायँगे छूट ।
निश्चय तो बस एक बात है, है बाक़ी सब झंझट झूठ—
मुरझा जाती कली सदा को एक बार जो जाती फूट ।

३४

कब तक, कब तक, मित्र! फिरोगे जिस-तिस की चिन्ता में व्यस्त?
कब तक, कब तक, और रहोगे, दीन और दुनिया में ग्रस्त ?
आओ, लो, प्याला भरदो फिर, दो दिन खुल खेलो ख़ैयाम
सुख-दुख का शशि तो योंही नित होता अस्त, उदय, फिर अस्त ।

३५

देता दोष भाग्य को बैठा जो उदास हो आठों याम
उसको देख देख कर दुनिया लज्जित होती है ख़ैयाम।
है धिक्कार हृदय को जिसमें उठी न कभी प्रेम की पीर,
औ' धिक् हैं वे अधर जिन्होंने चखी न यह मदिरा रस-धाम।

३६

"अस्ति" "नास्ति" के अन्तर का है, यों तो मुझको भी कुछ ज्ञान
और सहज ही कर सकता हूँ "ऊँच-नीच" की भी पहिचान।
किन्तु सत्य तो यह है मैंने सब विद्याओं में से एक
आठों अङ्ग डूब कर देखी है तो यह मदिरा रस-खान।

३७

यह मदिरा रस-खान, मुदमयी, विश्व-मोहिनी, मङ्गल-मूल ।
सञ्जीवन-बूटी हरती जो क्षण में जीवन के सब शूल ।
जिसके मन्दिरमें धँसते ही सब मत-सम्प्रदाय "ख़ैयाम"
हो जाते हैं एक, भूल कर अपने भेद-भाव निर्मूल ।

३८

घुल कर बह जाता है जिसमें झूठा जग का माया-मोह,
मिटते जिसके एक घूँट में आपस के विवाद-विद्रोह ।
पुण्यमयी पारसमणि मदिरा, जिसके स्पर्श-मात्र से, मित्र !
अति अनमोल स्वर्ण बन जाता यह खोटा जीवन का लोह ।

३९

हाँ, नव-यौवन की उमङ्ग में, मैंने मित्र ! अनेकों बार
छानी धूल बहुत पन्थों की, देखे बहु गुणियों के द्वार;
कूट-तर्क की भूल-भुलैयों में औ' भटका बहुत परन्तु—
भेद न मिला; घुसा जिससे था उसी द्वार से लौटा हार।

४०

चतुरों के सँग बैठ बैठ कर बोये बहुत ज्ञान के बीज
अपने हाथों से सींचा औ' उनको बहुत पसीज पसीज।
जीवन भर के घोर परिश्रम का फल मिला यही बस अन्त
"आया था जल की हिलोर सा, चला पवन सा क्षण में छीज।"

४१

क्या जाने किस दूर-देश से, क्यों, किस की इच्छा से, हाय !
आया था जल की हिलोर सा, जग में निरुद्देश, निरुपाय ?
अन्त पवन का झूका-सा औ', छूट चला जग से ख़ैयाम
क्या जाने किस दूर-देश को, असफल, अर्थशून्य, असहाय ?

४२

मेरी अनुमति लिये बिना ही दिया जगत में मुझको ठेल;
और अवश्य बिना पूछे ही देगा जग से अन्त ढकेल।
धोना है इस घोर निरादर के धब्बों का मन से मैल
प्याले पर प्याला भर दो, प्रिय, धरो पात्र पर पात्र उड़ेल।

४३

बुद्धि-यान पर चढ़ कर मैंने देखा सभी गगन-पाताल
ज्ञान-सिन्धु में पैठ निकाले, अति अमोल रत्नों के जाल
जीवन के इस जटिल जाल की सुलझाईं औ' ग्रन्थि असंख्य
किन्तु न सुलझा पाया, प्रियतम, कुटिल काल की ग्रन्थि कराल।

४४

कुटिल काल की ग्रन्थि न सुलझी, मिला न जीवन में कुछ सार;
अन्धी बुद्धि ज्ञान-दीपक ले ढूँढ़ फिरी सारा संसार;
मन की प्यास बुझाने को तब, पाने को सुख-दुख का भेद,
शरण गही, प्रियतम, मैंने इस मिट्टी के प्याले की हार।

४५

ओ' यह मिट्टी का प्याला भी होगा कभी स-जीव, स-काम;
क्योंकि अधर से अधर मिला कर, दे कर प्रेम-सुधा रस-धाम,
अस्फुट, भेद-भरे शब्दों में बोला, "ले, अवसर मत चूक,
एक बार जो गया यहाँ से लौटा फिर न कभी 'ख़ैयाम' !"

४६

लो प्याला भर भर दो फिर फिर, फिर फिर कहने का क्या फल?
हाथों से निकला जाता है लाख लाख का इक इक पल।
बीत चुका जो 'कल' होना था, क्या जाने होगा क्या 'कल'
आज चैन से कटती है तो 'कल' के हित क्यों हो बेकल ?

४७

'आज' चैन से कटती है तो 'कल' के ऊपर डालो धूल;
लौकिक-परलौकिक के झूठे झंझट में उलझो मत भूल।
जीवन की अमूल्य घड़ियाँ ये, इनको मत जाने दो व्यर्थ—
बैठ प्रणयिनी के संग दो दिन पी लो प्रेम-सुरा सुख-मूल।

४८

औ' यदि मोद-मयी मदिरा यह, और प्रिया के नयन अजान
नश्वर हैं तो सही;—जगत में है नश्वरता-मात्र प्रमाण।
तो फिर जब तक बने, चैन से रस लूटो, औ' जब यमदूत
अन्तिम विष का प्याला लावे, हँस हँस कर कर लेना पान।

४९

प्रियतम ! जब तक बने चैन से रस लूटो, देखो दे ध्यान--
यह विचित्र संसार-चक्र है केवल छाया-दीप समान।
सूर्य-दीप जलता है इसमें, हम तुम इसके चारों ओर
कल्पित छाया-चित्र-तुल्य सब, चक्कर खाते हैं हैरान।

५०

हम तुम तो गोटें हैं केवल, है शतरञ्ज जगत का खेल
रात-दिवस दोनों हैं इसके, काले-पीले घर दो-मेल।
इधर-उधर कुछ चाल चला कर काल खिलाड़ी लेता मार
औ' अनन्त की अगम पिटारी में धर देता अन्त सकेल।

५१

और भाग्य की चोटें खाकर करना मत अपलाप-विलाप
दायें-बायें जिधर चलावे, कन्दुक-इव जाना चुपचाप।
इस चौगान-भूमि में तुझको, डाला है जिसने ख़ैयाम,
आप जानता है वह सब कुछ, आप जानता है, **वह आप**।

५२

यह मत सोच कि एक बार जो, जायेगा तू जग को छोड़
पैदा होगा नहीं जगत् में तो फिर कोई तेरा जोड़।
नित्य ढालता है साक़ी ज्यों प्याले में बुद्बुदे असंख्य
त्यों नित नियति ढालती रहती तेरे से ख़ैयाम करोड़।

५३

जिस दिन प्रथम दिशा प्राची में उगा अरुण किरणों का जाल--
जिस दिन से प्रारम्भ हुई यह, शशि औ' ताराओं की चाल--
उसी, उसी दिन विधि की निर्मम, निडर लेखनी ने ख़ैयाम
है लिख कर रख दिया सृष्टि के अन्तिम दिन तक का सब हाल।

५४

अब चाहे खा, पी, ख़ुश हो ले, चाहे व्रत-उपास कर देख
चाहे चुपके सुख दुख सह ले, चाहे छाँट मीन औ' मेख;
चाहे आँसू बहा बहा कर भर दे तू समुद्र ख़ैयाम
एक बार के लिखे हुए पर मिटते नहीं भाग्य के लेख।

५५

हाँ, इस क्रूर चक्र के आगे चलता है कोई न उपाय
अन्त भाग्य के हाथों ही में, रहता हार-जीत का न्याय
कौन, कहाँ से, क्यों आया था ? जाना कहाँ, और क्यों, अन्त ?
प्रश्न जानता हूँ मैं भी सब, उत्तर कौन बतावे हाय ?

५६

और अधोमुख पान-पात्र यह कहते हैं जिसको आकाश--
जिसके नीचे मुँदे हुए हम, जीते हैं, पाते हैं नाश;
इसकी ओर हाथ फैला कर मत, मत माँग क्षमा की भीख
यह तो आप नियति का चाकर, भ्रमता है निरुपाय, निराश ।

५७

पहिले तो निर्णीत किया यह मेरा जीवन-मार्ग कराल;
बिछा दिये फिर स्वयं उसीमें पद पद पर विष-कण्टक-जाल;
आज फँस गया हूँ उनमें मैं, तो इसमें मेरा क्या दोष ?
खरा सुवर्ण चुकाऊँ कैसे, पाया है जब खोटा माल ?

५८

और सुनो लो, एक दिवस मैं पहुँचा इक कुम्हार के द्वार
वहाँ धरे देखे मैंने, प्रिय, भाँति भाँति के भाण्ड अपार
थोड़े से तो उन में से थे मूक और चेतना-विहीन
थोड़े एक जगह पर बैठे करते थे कुछ तर्क-विचार ।

५९

एक कह रहा था, "अच्छा जब, ले कर दो मुट्ठी भर धूल
अपने कला-कुशल हाथों से, अपनी इच्छा के अनुकूल—
मेरी सुन्दर मूर्ति रची यह, तो क्या बस इस लिए कि अन्त
टूट-फूट कर यह ज्यों की त्यों, फिर हो जाय धूल की धूल ?"

६०

बोला एक, "नही, कभी नहीं, सृजन-संहरण यह अविराम
व्यर्थ नहीं हो सकता; इसका बुरा नहीं होगा परिणाम।
मित्रो ! जिससे स्नेह-पूर्वक पी कर सदा बुझाते प्यास
नहीं तोड़ते हैं पागल भी बे-मतलब वह पात्र ललाम।"

६१

बोल उठा इतने में सहसा, रूप-हीन इक पात्र सरोष,
"मेरा रूप विरूप बना यह, क्यों कर ? कुम्भकार के दोष ?
अपने ही कर से उसने जब, सब को किया गुणागुण दान
तो क्यों एक नरक भोगेगा और दूसरा सुख-सन्तोष ?"

६२

यह सुन चुप हो रहे सभी तब, एक पात्र ने कहा पुकार,
"मेरी मिट्टी सूख गई है, पड़ी पड़ी विस्मृति के द्वार
मदिरा-सुधा चिर-प्रिया मेरी—पाऊँ जो उसकी दो बूँद
तो सम्भव है फिर हो जाये मुझ में नव-जीवन सञ्चार ।"

६३

हाँ, जब तक घट में जीवन है मधु ढाले जाओ स्वच्छन्द
और अन्त में जब चुक जाये जीवन का यह दुविधा-द्वन्द्व
द्राक्षा-रस में स्नान करा कर, पत्र उसी के अङ्ग लपेट
मुझे दफ़न कर देना, प्रियतम, किसी पुष्प-वन में सानन्द

६४

मेरी समाधिस्थ मिट्टी से निकलें ऐसे मनहर फूल—
पूरे उपवन में छा जाये ऐसी मदिर गन्ध मुद-मूल—
कट्टर सुरा-विरोधी भी जो एक बार निकलें उस ओर,
तो सुख से उन्मत्त हो उठें, अपने नेम-धर्म को भूल।

६५

तुम कहते हो महा-दोष है मदिरा पापिनि को कर दूर,
इसके पीछे भोगेगा तू, अन्त नरक के कण्टक क्रूर।
यह सच है; पर उभय लोक की सुख-श्री से बढ़कर ख़ैयाम,
है वह एक घड़ी जब मदिरा पी कर हो जाता हूँ चूर।

६६

वैर न मुझे धर्म से है कुछ, न कुछ विशेष पाप से प्रीति,
न कुछ बुरी ही लगती मुझको, प्रिय, बे-बात लोक की रीति।
मैं जो प्याले पर मरता हूँ, सो बस इसी लिए ख़ैयाम,
एक घड़ी को बिसर जाय यह नियति-चक्र की निर्मम नीति।

६७

यद्यपि हुई सुरा के पीछे कलुषित मेरी कीर्ति अमोल;
और लाख की साख बिक गई, दो चुल्लू पानी के मोल;
तो भी, तो भी, मुझको है इन मूर्ख कलालों पर आश्चर्य
मदिरा बेच बेच ये लेते मदिरा से बढ़ कर क्या मोल ?

६८

लिखी पाण्डु-लिपि में है मेरी, जो जो इस जीवन की पोल,
उन्हें खोल कर कह देना है लेना प्राण-दण्ड सिर मोल।
इन बकवादी विद्वानों में है न एक भी इतना योग्य
जिसके सम्मुख, मित्र ! कह सकूँ अपने मन की बातें खोल।

६९

मित्र ! विचारी है क्या तुमने कहो कभी यह अद्भुत बात
गला फाड़ कर रोता है क्यों कुक्कुट होते देख प्रभात ?
कहता, "हाय ! सुनो दिनकर की प्रथम किरण का कटु सन्देश
'जीवन की कुछ घड़ियों में से, लो यह चली और इक रात' ।"

७०

हा ! बस दो दिन फूल अन्त में अन्तर्हित होता मधुमास,
बातों-बात बीत जाता है यौवन का उल्लास-विलास ।
आने पाते नहीं कि चलने का करना पड़ता सामान
समय कहाँ इतना कि बुझावें सुख से बैठ प्रेम की प्यास ?

७१

प्रियतम ! हम-तुम कर पाते जो कहीं नियति-नटिनी से मेल--
अपने हाथों में होता जो जीवन का यह दुखमय खेल ।
तो फिर इसे मिटा कर फिर से रचते ऐसी सृष्टि नवीन
मन की साधें पुजतीं जिसमें, फलती जहँ आशा की बेल ।

७२

लो चन्द्रोदय हुआ आयु का बीता और एक दिन, हाय !
पूर्ण हो गया और एक लो जीवन-गाथा का अध्याय ।
पात्र भरो, शशिवदन ! कि यह शशि, जाकर फिर आवेगा लौट
लौटेगा न गया अवसर पर, करना चाहे कोटि उपाय ।

परिशिष्ट

छन्द नम्बर और
पंक्ति नम्बर — विवरण

१—पं० १–२ **मूल ख़ैयाम—**

> خورشید کمند صبح بر بام افگند
> کیخسرو روز باده در جام افگند

२—पं० ४ **मूल ख़ैयाम—**

> بر خیز که پر کنیم پیمانه ز می
> زان پیش که پر کنند پیمانهٔ ما

४—पं० ३–४ **मूसा का हाथ**—कहते हैं कि हज़रत मूसा बहुत काले थे। जब वे मिस्र के राजदरबार में पहुँचे और उनसे चमत्कार दिखाने को कहा गया, तो उन्होंने अपना हाथ ऊपर को उठाया और वह बर्फ़ की तरह चमकदार और सफ़ेद हो गया। इस लिए "ज्यों मूसा का हाथ" का अर्थ है चमत्कारपूर्ण।

ईसा का श्वास—ईरानियों का विश्वास है कि हज़रत ईसा मसीह अपनी मसीहाई अपने श्वास से करते थे। अतएव "ईसा का श्वास" का अर्थ है "हृदय को स्वस्थ करने वाला"।

५—पं० ३-४ मूल फ़िट्ज़-जेराल्ड (चतुर्थ संस्करण)—

The wine of life keeps
oozing drop by drop,
The leaves of life keep
falling one by one.

मूल ख़ैयाम—

چوں برگ ز شاخ عمر زیر آن گردم

६—पं० ३-४ मूल ख़ैयाम—

در موسم گل ز توبه یا رب توبه

११— **मूल रुबाई कितनी सुन्दर है !**

اسرار ازل را نه تو دانی ونه من
ویں حرف معمّا نه تو خوانی ونه من
هست از پس پردہ گفتگوئے من و تو
چوں پردہ بر اُفتد نه تو مانی ونه من

१२—पं० १–२ मूल ख़ैयाम—

چوں می گذرد عمر چه بغداد و چه بلخ
پیمانه چوں پر شود چه شیریں و چه تلخ

१६— मूल ख़ैयाम—

دوزخ شرری ز رنج بیهودۂ ماست
فردوس دمی ز وقت آسودۂ ماست

और—

گر بادشهی و گر گدائے بازار
ایں هردو بیک نرخ بود آخرکار

२०—पं० ३–४ मूल ख़ैयाम—

تو زر نه اے غافل ناداں که ترا
در خاک نهند و باز بیروں آیند

२२— मूल ख़ैयाम—

آں قصر که بر چرخ همی زد پهلو
بردرگۂ او شهاں نهادندے رو
دیدم که بر کنگرۂ او فاختۂ
بنشسته همی گفت که کوکو ! کوکو !

२४—पं० ३–४ मूल ख़ैयाम—

خارے که بزیر پائے هر حیوانیست
زلفے صنمی و ابروئے جانانیست

३०—— मूल ख़ैयाम——

قومی متفکّر اند در مذهب و دین
جمعی متحیّر اند درشک و یقین
ناگاه منادی بر آید ز مکین
کای بیخبران راه آنست ونه این

३४——पं० ४ मूल ख़ैयाम——

از سلخ بغره آید از غره بسلخ

३५——पं० १-२ मूल ख़ैयाम——

خیام زمانهٔ از کسی دارد ننگ
کو در غم ایّام نشیند دل تنگ

४३—— मूल ख़ैयाम——

از جرم حضیض خاک تا اوج زحل
کردم همه مشکلات گردوں را حل
بیروں جستم ز بند هر مکر و حیل
هر بند کشاده شد مگر بند اجل

४८——पं० १-२ मूल ख़ैयाम——

چو آقبت جهاں کار نیستی است
انگار نیستی چو هستی – خوش باش

४६——पं० २ छाया-द्वीप——फ़ानूसेख़याल का मन-गढ़न्त नाम।

परिशिष्ट

५६—पं० ३-४ मूल ख़ैयाम—

با چرخ مکن حواله که اندر راه عقل
چرخ از تو هزار بار بیچاره تر است

६५— मूल ख़ैयाम—

گویند مخور می که بلاکش باشی
در روز مکافات در آتش باشی
این هست ولی ز هر دو عالم خوشتر
این یک دم کز شراب سر خوش باشی

६६— मूल ख़ैयाम—

می خوردن من نه از برائے طربست
نز بهر نشاط و ترک دین و ادبست
خواهم که دمی ز خویشتن باز رهم
می خوردن و مست بودنم زان سببست

६८— मूल ख़ैयाम—

اسرار جهان چنانکه در دفتر ماست
گفتن نتوان زانکه وبال سر ماست
چون نیست درین مردم دانا اهلی
نتوان گفتن هر آنچه در خاطر ماست

६९— मूल ख़ैयाम—

هنگام سفیده دم خروس سحری
دانی که چرا همیکند نوحه‌گری

یعنی که نمودند در آیینهٔ صبح
کز عمر شبی گذشت تو بیخبری

७०—पं० ३ मूल ख़ैयाम—

هر گاه که خواهد که نشیند از پا
گیرد اجلش دست که بالا پیما

७२—पं० ४ मूल ख़ैयाम—

که این یک‌دم عاریت درین کنج فنا
بسیار بجوئی ونه یابی دیگر